Chapter तेरह

ब्रह्महत्या से पीड़ित राजा इन्द्र

इस अध्याय में एक ब्राह्मण (वृत्रासुर) के वध से उत्पन्न इन्द्र का भय, उसका भागना तथा भगवान् विष्णु की कृपा द्वारा उसकी रक्षा का वर्णन किया गया है।

जब सब देवताओं ने मिलकर इन्द्र से वृत्रासुर का वध करने के लिए प्रार्थना की थी तो उसने इनकार कर दिया था, क्योंकि वृत्रासुर ब्राह्मण था। किन्तु देवताओं ने इन्द्र को यह कह कर प्रोत्साहित किया था कि वह उसे मारने से न डरें, क्योंकि उसकी रक्षा नारायण-कवच अथवा स्वयं भगवान् द्वारा हुई है। मनुष्य नारायण का नाम लेने मात्र से स्त्री, गाय या ब्राह्मण के वध से लगने वाले पाप-फल से मुक्त हो जाता है। देवताओं ने इन्द्र से अश्वमेघ यज्ञ करने के लिए कहा जिससे नारायण प्रसन्न हो सकें क्योंकि इस यज्ञ के करने से यदि कोई समूचे ब्रह्माण्ड का भी वध कर दे तो भी उसको हत्या के पाप का फल नहीं भोगना पड़ता।

देवताओं के इस उपदेश को सुनकर इन्द्र ने वृत्रासुर से युद्ध किया, किन्तु जब वृत्रासुर मारा गया तो इन्द्र को छोड़ कर सभी लोग संतुष्ट हुए क्योंकि इन्द्र वृत्रासुर की स्थिति से परिचित था। महान् पुरुष का स्वभाव ऐसा ही होता है। यदि कोई महान् पुरुष अवैध रीति से धन प्राप्त करता भी है, तो वह सदा लज्जित होता है तथा उसे पश्चाताप होता है। इन्द्र को यह निश्चय हो गया कि वह ब्राह्मण-हत्या जैसे पाप में फँस गया है। यही नहीं, यह ब्रह्महत्या प्रत्यक्ष रूप में उसका पीछा करने लगा, जिससे डर कर वह इधर-उधर भागता रहा और सोचता रहा कि इस पाप से किस तरह मुक्त हुआ जाये। वह मानस-सरोवर में गया और वहाँ पर धन की देवी (लक्ष्मी जी) के संरक्षण में

एक हजार वर्षों तक ध्यान करता रहा। इस अवधि में इन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में नहुष स्वर्गलोक पर शासन करता रहा। दुर्भाग्यवश वह इन्द्र की पत्नी शची देवी के सौन्दर्य से आकृष्ट हो उठा और उसे अपने इस पाप-विचार के कारण अगले जीवन में सर्प का शरीर धारण करना पड़ा। तत्पश्चात् इन्द्र ने उच्च ब्राह्मणों एवं मुनियों की सहायता से एक महान् यज्ञ किया। तब जाकर वह ब्रह्महत्या के पाप के फल से मुक्त हो सका।

श्रीशुक उवाच
वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ।
सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृत्रे हते—वृत्रासुर के मारे जाने पर; त्रयः लोकाः—तीनों लोक (उच्च, मध्य तथा अधःलोक); विना—के सिवा; शक्रेण—इन्द्र, जिसे शक्र भी कहते हैं; भूरि-द—हे अत्यन्त दानी महाराज परीक्षित; स-पालाः—विभिन्न लोकों के अधिपतियों सहित; हि—निस्सन्देह; अभवन्—हुआ; सद्यः—तुरन्त; विज्वराः—मृत्यु के भय से रहित; निर्वृत—अत्यधिक प्रसन्न; इन्द्रियाः—जिसकी इन्द्रियाँ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे महादानी राजा परीक्षित! वृत्रासुर के वध से इन्द्र के अतिरिक्त तीनों लोकों के लोकपाल एवं समस्त निवासी तुरन्त ही प्रसन्न हुए और उनकी सब चिन्ताएँ जाती रहीं।

देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ।
प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

देव—देवता; ऋषि—परम साधु पुरुष; पितृ—पितृलोक के वासी; भूतानि—तथा अन्य जीवात्माएँ; दैत्याः—असुर; देव-अनुगाः—देवताओं के नियमों का पालन करने वाले अन्य लोकों के वासी; स्वयम्—स्वतंत्र रूप से (इन्द्र की अनुमति मांगने के बिना); प्रतिजग्मुः—वापस चले गये; स्व-धिष्ण्यानि—अपने-अपने लोकों तथा आवासों को; ब्रह्म—श्रीब्रह्मा; ईश—श्रीशिव; इन्द्र-आदयः—तथा इन्द्र आदि देवता; ततः—तत्पश्चात्।

तत्पश्चात् सभी देवता, महान् साधु पुरुष, पितृलोक तथा भतूलोक के सभी वासी, असुर, देवताओं के अनुचर तथा ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र के अधीन देवगण अपने-अपने धामों को लौट गये। किन्तु विदा लेते समय वे इन्द्र से कुछ बोले नहीं।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है—

ब्रह्मेशेन्द्रादय इति। इन्द्रस्य स्व-धिष्ण्यगमनं नोपपद्यते वृत्रवधक्षण एव ब्रह्महत्योपद्रव-प्राप्तेः। तस्मात् तत इत्यनेन मानससरोवरादागत्य प्रवर्तितादश्वमेधात् परत इति व्याख्येम्।

ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवगण अपने-अपने धामों को चले गये, किन्तु इन्द्र नहीं गया, क्योंकि वृत्रासुर का वध करने के कारण वह विचलित था। वृत्रासुर वास्तव में ब्राह्मण था। वृत्रासुर के वध के बाद इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप-फल से मुक्त होने के लिए मानस-सरोवर गया। वहाँ से लौटने के बाद उसने अश्वमेध यज्ञ किया और तब वह अपने लोक गया।

श्रीराजोवाच
इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ।
येनासन्सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने पूछा; इन्द्रस्य—इन्द्र का; अनिर्वृतेः—दुख का; हेतुम्—कारण; श्रोतुम्—सुनना; इच्छामि—चाहता हूँ; भोः—हे भगवान्; मुने—हे मुनि शुकदेव गोस्वामी; येन—जिससे; आसन्—थे; सुखिनः—अत्यन्त प्रसन्न; देवाः—समस्त देवता; हरेः—इन्द्र का; दुःखम्—दुख, अप्रसन्नता; कुतः—कहाँ से; अभवत्—था।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे मुनि! इन्द्र की अप्रसन्नता का कारण क्या था? मैं इसके विषय में सुनना चाहता हूँ। जब उसने वृत्रासुर का वध कर दिया तो सभी देवता प्रसन्न हुए, तो फिर इन्द्र स्वयं क्यों अप्रसन्न था?

तात्पर्य : वास्तव में यह अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न है। जब कोई असुर मारा जाता है, तो निश्चित रूप से सभी देवता प्रसन्न होते हैं। यहाँ पर, वृत्रासुर के मारे जाने पर सभी देवता प्रसन्न थे, परन्तु इन्द्र अप्रसन्न था, क्योंकि उसे पता था कि उसने एक परम भक्त तथा ब्राह्मण का वध किया है। वृत्रासुर बाहर से असुर प्रतीत होता था, किन्तु भीतर से वह परम भक्त होने के कारण एक महान् ब्राह्मण था।

यहाँ पर यह स्पष्ट सूचित किया गया है कि जो व्यक्ति तनिक भी आसुरी वृत्ति का नहीं होता, जैसे प्रह्लाद महाराज या बलि महाराज, वह बाह्यतः असुर हो सकता है या असुरों के वंश में जन्मा

हो सकता है। अत: वास्तविक संस्कार कहता है कि मात्र जन्म के अनुसार किसी को असुर या देवता नहीं माना जाना चाहिए। इन्द्र से युद्ध करते समय वृत्रासुर ने अपने को भगवान् का परम भक्त सिद्ध कर दिया था। यही नहीं, इन्द्र से युद्ध बन्द करने के तुरन्त बाद वृत्रासुर वैकुण्ठवासी हो गया और संकर्षण का संगी बन गया। इन्द्र को यह ज्ञात था, अत: ऐसे असुर को, जो वास्तव में एक वैष्णव या ब्राह्मण था, मारने से वह अत्यन्त दुखी था।

वैष्णव पहले से ब्राह्मण होता है, ब्राह्मण भले ही वैष्णव न होता हो। *पद्मपुराण* का कथन है—

षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्रविशारद:।

अवैष्णवो गुरुर्न स्याद् वैष्णव: श्वपचो गुरु:॥

भले ही कोई अपने संस्कार तथा परिवार से ब्राह्मण हो और वैदिक ज्ञान (*मन्त्र-तन्त्र विशारद*) में दक्ष हो, किन्तु यदि वह वैष्णव नहीं है, तो गुरु नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि दक्ष ब्राह्मण वैष्णव नहीं भी हो सकता है, किन्तु एक वैष्णव पहले से ब्राह्मण होता है। एक लखपती के पास सैकड़ों-हजारों रुपये हैं किन्तु जिसके पास सैकड़ों-हजारों रुपए हों तो यह आवश्यक नहीं कि वह लखपती हो। वृत्रासुर परम वैष्णव था, अत: वह ब्राह्मण भी था।

श्रीशुक उवाच

वृत्रविक्रमसंविग्ना: सर्वे देवा: सहर्षिभि: ।
तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृत्र—वृत्रासुर के; विक्रम—शौर्य से; संविग्ना:—चिन्तायुक्त होकर; सर्वे—सभी; देवा:—देवतागण; सह ऋषिभि:—महान् साधुओं समेत; तत्-वधाय—उसके वध के लिए; आर्थयन्—प्रार्थना की; इन्द्रम्—इन्द्र से; न ऐच्छत्—इनकार कर दिया; भीत:—डरकर; बृहत्-वधात्—ब्राह्मण वध के कारण।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया—जब समस्त ऋषि तथा देवता वृत्रासुर की असाधारण शक्ति से विचलित हो रहे थे तो उन्होंने एकत्र होकर इन्द्र से उसका वध करने के लिए याचना की थी। किन्तु इन्द्र ने ब्राह्मण-हत्या के भय से उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी

थी।

इन्द्र उवाच
स्त्रीभूद्रुमजलैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ।
विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः उवाच—राजा इन्द्र ने उत्तर दिया; स्त्री—स्त्री; भू—पृथ्वी; द्रुम—वृक्ष; जलैः—तथा जल के द्वारा; एनः—यह (पाप); विश्वरूप—विश्वरूप के; वध—वध से; उद्भवम्—उत्पन्न; विभक्तम्—बाँट लिया; अनुगृह्णद्भिः—अपने अपने अनुग्रह से; वृत्र-हत्याम्—वृत्र की हत्या से; क्व—कैसे; मार्ज्मि—मुक्त हो सकूँगा; अहम्—मैं।

राजा इन्द्र ने उत्तर दिया—जब मैंने विश्वरूप का वध किया, तो मुझे अत्यधिक पाप-बन्धन मिला था, किन्तु स्त्रियों, धरती, वृक्षों तथा जल ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था, जिससे मैं अपने पाप को उन सबों में बाँट सका। किन्तु यदि मैं अब एक अन्य ब्राह्मण, वृत्रासुर, का वध करूँ तो भला पाप-बन्धनों से मैं अपने को किस प्रकार मुक्त कर सकूँगा?

श्रीशुक उवाच
ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ।
याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; ऋषयः—परम साधुगण; तत्—वह; उपाकर्ण्य—सुनकर; महा-इन्द्रम्—राजा इन्द्र से; इदम्—यह; अब्रुवन्—कहा; याजयिष्यामः—हम महान् यज्ञ करेंगे; भद्रम्—कल्याण; ते—तुम्हारा; हयमेधेन—अश्वमेध यज्ञ से; मा स्म भैः—मत भयभीत हो।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—यह सुनकर ऋषियों ने इन्द्र को उत्तर दिया, ''हे स्वर्ग के राजा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम डरो नहीं। हम तुम्हें ब्राह्मण-हत्या से लगने वाले किसी भी पाप से मुक्ति के लिए एक अश्वमेघ यज्ञ करेंगे।''

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।
इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

हयमेधेन—अश्वमेध यज्ञ से; पुरुषम्—परम पुरुष; परमात्मानम्—परमात्मा को; ईश्वरम्—परम नियन्ता; इष्ट्वा—पूजा करके; नारायणम्—भगवान् नारायण को; देवम्—परमेश्वर; मोक्ष्यसे—तुम मुक्त हो जाओगे; अपि—भी; जगत्-वधात्—सारे संसार का वध करने के पाप से।

ऋषियों ने आगे कहा—हे राजा इन्द्र! अश्वमेध यज्ञ करके उसके द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को, जो परमात्मा, भगवान्, नारायण और परम नियन्ता हैं, प्रसन्न करके मनुष्य सारे संसार के वध के पाप-फलों से भी मुक्त हो सकता है, वृत्रासुर जैसे एक असुर के वध की तो बात ही क्या है?

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन्यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥
तमश्वमेधेन महामखेन
श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ।
हत्वापि सब्रह्मचराचरं त्वं
न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-हा—ब्राह्मण की हत्या करने वाला; पितृ-हा—पिता की हत्या करने वाला; गो-घ्नः—गोहत्या करने वाला; मातृ-हा—माता का वध करने वाला; आचार्य-हा—अपने गुरु की हत्या करने वाला; अघ-वान्—ऐसा पापी पुरुष; श्व-अदः—कुत्ता खाने वाला; पुल्कसकः—चाण्डाल, जो शूद्र से भी नीच होता है; वा—अथवा; अपि—भी; शुद्ध्येरन्—शुद्ध किया जा सकता है; यस्य—जिस (भगवान् नारायण) के; कीर्तनात्—नाम जप से; तम्—उसको; अश्वमेधेन—अश्वमेधयज्ञ के द्वारा; महा-मखेन—समस्त यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ; श्रद्धा-अन्वितः—श्रद्धा युक्त; अस्माभिः—हमारे द्वारा; अनुष्ठितेन—किया गया; हत्वा—मार कर; अपि—भी; स-ब्रह्म-चर-अचरम्—ब्राह्मणों समेत सभी जीवात्माएँ; त्वम्—तुम; न—नहीं; लिप्यसे—कल्मषग्रस्त होते हो; किम्—तो फिर क्या; खल-निग्रहेण—एक दुष्ट असुर को मारने से।

भगवान् नारायण के पवित्र नाम के जप-मात्र से ब्राह्मण, गाय, पिता, माता, गुरू की हत्या करने वाला मनुष्य समस्त पाप-फलों से तुरन्त मुक्त किया जा सकता है। अन्य पापी मनुष्य भी, यथा कुत्ते को खाने वाले तथा चांडाल, जो शूद्रों से भी निम्न हैं, इसी प्रकार से मुक्त हो जाते हैं। फिर आप तो भक्त हैं और हम सभी महान् अश्वमेध यज्ञ करके आपकी सहायता करेंगे। यदि आप भी इस प्रकार भगवान् नारायण को प्रसन्न करें तो फिर आपको डर कैसा? तब आप मुक्त हो जायेंगे, भले ही आप ब्राह्मणों सहित सारे ब्रह्माण्ड की हत्या क्यों न कर दें। भला वृत्रासुर जैसे विघ्नकारी एक असुर की हत्या की क्या बात है?

तात्पर्य : *बृहद् विष्णु पुराण* में कहा गया है—

नाम्नो हि यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।

तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नरः ॥

यही नहीं, जगदानन्द पंडित कृत *प्रेमविवर्त* में कहा गया है—

एक 'कृष्ण नामे' पापीर यत पाप-क्षय ।

बहु जन्मे सेइ पापी करिते नारय ॥

इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् के पवित्र नाम का एक बार जप करने से मनुष्य जितने पाप करने के बारे में सोच सकता है उनसे भी अधिक पापों के फलों से वह मुक्त हो सकता है। पवित्र नाम में इतनी आध्यात्मिक शक्ति होती है, कि केवल नाम-जप से समस्त पापकर्मों के फलों से मुक्त हुआ जा सकता है। तब उनके सम्बन्ध में क्या कहा जाये जो नियमपूर्वक पवित्र नाम का जप करते हैं, या श्रीविग्रह की पूजा करते हैं ? ऐसे शुद्ध भक्तों के लिए पाप-फलों से मोक्ष निश्चित है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं होता कि जानबूझकर पाप-कर्म करके पवित्र नाम का जप करने के कारण अपने को उसके फल से मुक्त समझ लिया जाये। ऐसी मानसिकता भगवान् के चरणकमलों पर घोर अपराध है। *नाम्नो बलात् यस्य हि पापबुद्धिः*—निस्सन्देह भगवान् के पवित्र नाम में समस्त पाप-कर्मों को निष्प्रभावित करने की शक्ति है, किन्तु यदि कोई नाम जप करते हुए जानबूझकर बारम्बार पाप करता है, तो वह निन्दनीय है।

इन श्लोकों में अनेक प्रकार के पापकर्म करने वालों के नाम गिनाये गये हैं। *मनु-संहिता* में निम्नलिखित नाम दिये गये हैं। ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता के गर्भ से उत्पन्न पुत्र *पारशव* या *निषाद* कहलाता है अर्थात् वह शिकारी जो चोरी करता है। शूद्र स्त्री के गर्भ से निषाद द्वारा उत्पन्न बालक *पुक्कस* कहलाता है। शूद्र की कन्या से क्षत्रिय द्वारा जन्म दिया गया पुत्र *उग्र* कहलाता है। शूद्र द्वारा क्षत्रिय की कन्या से उत्पन्न किया गया पुत्र *क्षत्ता* कहलाता है। निम्न वर्ण की स्त्री के गर्भ से क्षत्रिय द्वारा उत्पन्न किया गया पुत्र *श्वाद* अथवा कुत्ता खाने वाला कहलाता है। ऐसी सन्ततियाँ अत्यन्त पापी

मानी जाती हैं, किन्तु भगवान् का पवित्र नाम इतना प्रबल है कि केवल हरे कृष्ण मंत्र के जप से ये सभी पवित्र किए जा सकते हैं।

हरे कृष्ण-आन्दोलन जन्म या कुल का विचार किये बिना प्रत्येक व्यक्ति को पवित्र बनने का सुअवसर प्रदान करता है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (२.४.१८) में पुष्टि की गई है—

किरात हूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा

आभीर शुम्भा यवना: खसादय:।

येऽन्येच पापा यदपाश्रयाश्रया:

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नम:॥

''किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे पापी भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करने से पवित्र हो जाते हैं क्योंकि वे परम शक्ति हैं। उन सर्वशक्तिमान भगवान् को सादर नमस्कार है।'' ऐसे पापी व्यक्ति भी निश्चित रूप से शुद्ध हो सकते हैं, यदि शुद्ध भक्त के निर्देशन में वे भगवान् के पवित्र नाम का जप करते हैं।

यहाँ पर ऋषिगण राजा इन्द्र को वृत्रासुर के वध के लिए प्रोत्साहित करते हैं, भले ही उसे ब्रह्म-हत्या क्यों न लगे और वे उसे अश्वमेध यज्ञ करके पाप से छुड़ाने का आश्वासन देते हैं। किन्तु इस प्रकार जानबूझ के किए पश्चाताप के फलों से पाप-कर्म करने वाले को छुटकारा नहीं मिल सकता। इसे अगले श्लोक में देखा जाएगा।

श्रीशुक उवाच

एवं सञ्चोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम्।
ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम्॥ १०॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सञ्चोदित:—प्रोत्साहित होकर; विप्रै:—ब्राह्मणों के द्वारा; मरुत्वान्—इन्द्र ने; अहनत्—वध कर दिया; रिपुम्—अपने शत्रु, वृत्रासुर को; ब्रह्म-हत्या—एक ब्राह्मण की हत्या का पाप; हते—मारे जाने पर; तस्मिन्—जब वह (वृत्रासुर); आससाद—पास गया; वृषाकपिम्—इन्द्र जिसको वृषाकपि भी कहते हैं।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—ऋषियों के वचनों से प्रोत्साहित होकर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध कर दिया और जब वह मारा गया तो ब्रह्महत्या का पाप फल इन्द्र के पास पहुँचा।

तात्पर्य : वृत्रासुर को मारने के बाद इन्द्र ब्रह्महत्या से नहीं बच सका। पहले उसने परिस्थितिवश क्रोध में आकर विश्वरूप नामक एक ब्राह्मण की हत्या कर दी थी, किन्तु इस बार ऋषियों के उपदेश के अनुसार उसने जानबूझकर एक दूसरे ब्राह्मण का बध किया था। अत: पाप फल पहले से भी अधिक बड़ा था। इन्द्र को प्रायश्चित्त हेतु मात्र यज्ञ करके इस पाप से मुक्त नहीं किया जा सकता था। उसे अपने पापों के घोर फल भोगने पड़े और जब वह उनसे मुक्त हुआ तभी ब्राह्मणों ने उसे अश्वमेध करने दिया। भगवान् के नाम जप के बल पर जानबूझकर पापकर्म करने या फिर प्रायश्चित्त कर लेने से किसी को, यहाँ तक कि इन्द्र या नहुष को भी, छुटकारा नहीं मिल सकता। स्वर्ग में इन्द्र की अनुपस्थिति में नहुष स्थानापन्न था और इन्द्र अपने पापों से मुक्ति पाने के लिए इधर-उधर दौड़ रहा था।

तयेन्द्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ।
ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तया—उस कार्य से; इन्द्रः—राजा इन्द्र ने; स्म—निस्सन्देह; असहत्—सहन किया; तापम्—क्लेश या दुख; निर्वृतिः—प्रसन्नता; न—नहीं; अमुम्—उसको; आविशत्—प्रवेश किया; ह्रीमन्तम्—लज्जाशील; वाच्यताम्—अपयश; प्राप्तम्—प्राप्त करके; सुखयन्ति—प्रसन्नता प्रदान करते हैं; अपि—यद्यपि; नो—नहीं; गुणाः—उत्तम गुण यथा ऐश्वर्य आदि।

देवताओं की सलाह से इन्द्र ने वृत्रासुर का वध कर दिया और इस पापपूर्ण हत्या के कारण उसे कष्ट उठाना पड़ा। यद्यपि अन्य देवतागण प्रसन्न थे, किन्तु वृत्रासुर की हत्या से उसे तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई। इन्द्र के इस क्लेश में अन्य उत्तम गुण, यथा धैर्य तथा ऐश्वर्य, उसके सहायक नहीं बन सके।

तात्पर्य : मनुष्य के पास कितना ही भौतिक ऐश्वर्य क्यों न रहे, पापकर्म करके वह कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। इन्द्र ने उसे सत्य पाया। लोग उसकी यह कहकर निन्दा करने लगे, ''इस व्यक्ति

ने स्वर्ग का भौतिक सुख भोगने के लिए ब्राह्मण की हत्या कर दी।'' यद्यपि इन्द्र स्वर्ग का राजा था और भौतिक ऐश्वर्य भोग रहा था, किन्तु जनता के दोषारोपणों के कारण वह निरन्तर दुखी था।

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ।
जरया वेपमानाङ्गीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२॥
विकीर्य पलितान्केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ।
मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

ताम्—ब्रह्महत्या को; ददर्श—देखा; अनुधावन्तीम्—पीछा करते हुए; चाण्डालीम्—निम्न श्रेणी की स्त्री; इव—सदृश; रूपिणीम्—रूप धारण करके; जरया—बुढ़ापे के कारण; वेपमान-अङ्गीम्—काँपते हुए अंगों वाली; यक्ष्म-ग्रस्ताम्—यक्ष्मा रोग से ग्रस्त; असृक्-पटाम्—रक्त से सने वस्त्रों वाली; विकीर्य—बिखेरे हुए; पलितान्—श्वेत; केशान्—बाल; तिष्ठ तिष्ठ—ठहरो ठहरो; इति—इस प्रकार; भाषिणीम्—कहते हुए; मीन-गन्धि—मछली की गन्ध; असु—जिसकी श्वास; गन्धेन—गन्ध से; कुर्वतीम्—करती हुई; मार्ग-दूषणम्—सारे रास्ते का प्रदूषण।

इन्द्र ने साक्षात् ब्रह्महत्या के फल को एक चाण्डाल स्त्री के समान प्रकट होकर अपना पीछा करते देखा। वह अत्यन्त वृद्धा प्रतीत होती थी और उसके शरीर के सभी अंग काँप रहे थे। यक्ष्मा रोग से पीड़ित होने के कारण उसका सारा शरीर तथा वस्त्र रक्त से सने थे। उसकी श्वास से मछली की-सी असह्य दुगन्ध निकल रही थी जिससे सारा रास्ता दूषित हो रहा था। उसने इन्द्र को पुकारा, ''ठहरो! ठहरो!''

तात्पर्य : जब मनुष्य को यक्ष्मा रोग हो जाता है, तो प्राय: रक्त-वमन होता है, जिससे कपड़े रक्त से सन जाते हैं।

नभो गतो दिश: सर्वा: सहस्राक्षो विशाम्पते ।
प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

नभ:—आकाश को; गत:—जाकर; दिश:—दिशाओं को; सर्वा:—समस्त; सहस्र-अक्ष:—इन्द्र, जिसके एक हजार आँखें हैं; विशाम्पते—हे राजा; प्राक्-उदीचीम्—उत्तरपूर्व; दिशम्—दिशा में; तूर्णम्—अत्यन्त वेग से; प्रविष्ट:—प्रवेश किया; नृप—हे राजा; मानसम्—मानस-सरोवर नामक झील में।

हे राजन्! इन्द्र पहले आकाश की ओर भागा, किन्तु उसने वहाँ भी उस ब्रह्महत्या रूपिणी

स्त्री को अपना पीछा करते देखा। जहाँ कहीं भी वह गया, यह डायन उसका पीछा करती रही। अन्त में वह तेजी से उत्तरपूर्व की ओर गया और मानस सरोवर में घुस गया।

स आवसत्पुष्करनालतन्तू-
नलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ।
वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः
सञ्चिन्तयन्ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (इन्द्र); आवसत्—रहता रहा; पुष्कर-नाल-तन्तून्—कमल नाल के तन्तुजाल में; अलब्ध-भोगः—किसी प्रकार की भौतिक सुविधा न पाते हुए; यत्—जो; इह—यहाँ; अग्नि-दूतः—अग्निदेव नामक दूत; वर्षाणि—स्वर्गीय वर्षों तक; साहस्रम्—एक हजार; अलक्षितः—अदृश्य; अन्तः—अपने हृदय में; सञ्चिन्तयन्—सदैव सोचते हुए; ब्रह्म-वधात्—ब्रह्म हत्या से; विमोक्षम्—मुक्ति।

सदैव यह सोचते हुए कि ब्रह्महत्या से किस प्रकार छुटकारा प्राप्त हो, राजा इन्द्र, सबों से अदृश्य रहकर सरोवर में कमलनाल के सूक्ष्म तन्तुओं के भीतर एक हजार वर्ष तक रहा। अग्निदेव उसे समस्त यज्ञों का उसका भाग लाकर देते, क्योंकि अग्निदेव जल में प्रवेश करने से भयभीत थे, अतः इन्द्र एक तरह से भूखों मर रहा था।

तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास
विद्यातपोयोगबलानुभावः ।
स सम्पदैश्वर्यमदान्धबुद्धि-
र्नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; त्रिणाकम्—स्वर्गलोक; नहुषः—नहुष; शशास—शासन करता रहा; विद्या—शिक्षा; तपः—तपस्या; योग—योग; बल—तथा शक्ति से; अनुभावः—से युक्त; सः—वह (नहुष); सम्पत्—प्रभूत सम्पत्ति का; ऐश्वर्य—तथा ऐश्वर्य; मद—घमंड से; अन्ध—अन्धा; बुद्धिः—उसकी बुद्धि; नीतः—ले जाया गया; तिरश्चाम्—सर्पों की; गतिम्—गन्तव्य को; इन्द्र-पत्न्या—इन्द्र की पत्नी शची देवी द्वारा।

जब तक राजा इन्द्र कमलनाल के भीतर जल में रहा, नहुष अपने ज्ञान, तप तथा योग के कारण स्वर्गलोक का शासन चलाने के लिए सक्षम बना दिया गया। किन्तु शक्ति तथा ऐश्वर्य के मद से अंधा होकर उसने इन्द्र की पत्नी के साथ रमण करने का अवांछित प्रस्ताव रखा।

इस प्रकार वह एक ब्राह्मण द्वारा शापित हुआ और बाद में सर्प बन गया।

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत
ऋतम्भरध्याननिवारिताघः ।
पापस्तु दिग्देवतया हतौजा-
स्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥ १७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; गतः—चले गये; ब्रह्म—ब्राह्मणों के; गिरा—शब्दों से; उपहूतः—आमंत्रित होकर; ऋतम्भर—सत्य का पोषण करने वाले परमेश्वर में; ध्यान—ध्यान द्वारा; निवारित—रोका जाकर; अघः—जिसका पाप; पापः—पाप-पूर्ण कर्म; तु—तब; दिक्-देवतया—रुद्रदेव द्वारा; हत-ओजाः—समस्त शौर्य के क्षीण होने पर; तम्—उस (इन्द्र) को; न अभ्यभूत्—परास्त नहीं कर सका; अवितम्—सुरक्षित होने से; विष्णु-पत्न्या—धन की देवी, भगवान् विष्णु की पत्नी द्वारा।

समस्त दिशाओं के देवता रुद्र के प्रताप से इन्द्र के पाप कम हो गये। चूँकि इन्द्र की रक्षा मानस-सरोवर के कमल कुंजों में निवास करने वाली धन की देवी भगवान् विष्णु की पत्नी द्वारा की जा रही थी, अतः इन्द्र के पापों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में भगवान् विष्णु की निष्ठा-पूर्वक पूजा करने से इन्द्र के सारे पाप छूट गये। तब ब्राह्मणों ने उसे पुनः स्वर्गलोक में बुलाकर उसके पूर्व पद पर स्थापित कर दिया।

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ।
यथावद्दीक्षयां चक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥ १८॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (इन्द्र को); च—तथा; ब्रह्म-ऋषयः—सभी ऋषि तथा ब्राह्मण; अभ्येत्य—के पास जाकर; हयमेधेन—अश्वमेध यज्ञ के द्वारा; भारत—हे राजा परीक्षित; यथावत्—विधिपूर्वक; दीक्षयाम् चक्रुः—दीक्षा दी; पुरुष-आराधनेन—परम पुरुष हरि की आराधना द्वारा; ह—निस्सन्देह।

हे राजन्! जब इन्द्र स्वर्गलोक में पहुँच गया तो साधुवत् ब्राह्मण उसके पास गये और परमेश्वर को प्रसन्न करने के निमित्तअश्वमेध यज्ञ के लिए उसे समुचित रूप से दीक्षित किया।

अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ।
अश्वमेधे महेन्द्रेण विततेब्रह्मवादिभिः ॥ १९॥

स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ।
नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अथ—अतः; इज्यमाने—पूजित होकर; पुरुषे—श्रीभगवान्; सर्व—समस्त; देव-मय-आत्मनि—परमात्मा तथा देवताओं के पालक; अश्वमेधे—अश्वमेध यज्ञ के माध्यम से; महा-इन्द्रेण—राजा इन्द्र द्वारा; विततेसम्पन्न कराया गया; ब्रह्म-वादिभिः—वैदिक ज्ञान में दक्ष ऋषियों तथा ब्राह्मणों द्वारा; सः—वह; वै—निस्सन्देह; त्वाष्ट्र-वधः—त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर का वध; भूयात्—हो; अपि—यद्यपि; पापचयः—पाप समूह; नृप—हे राजा; नीतः—लाया गया; तेन—उस (अश्वयज्ञ) के द्वारा; एव—निश्चय ही; शून्याय—शून्य, कुछ नहीं; नीहारः—कोहरा; इव—सदृश; भानुना—तेजमय सूर्य के द्वारा।

ऋषितुल्य ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न किये गये अश्वमेध यज्ञ ने इन्द्र को समस्त पाप-बन्धनों से मुक्त कर दिया, क्योंकि उस यज्ञ में उसने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा की थी। हे राजन्! यद्यपि उसने गम्भीर पापकृत्य किया था, किन्तु उस यज्ञ से वह पाप कृत्य तुरन्त उसी प्रकार विनष्ट हो गया, जिस प्रकार सूर्य के तेज प्रकाश से कोहरा छँट जाता है।

स वाजिमेधेन यथोदितेन
विततमानेन मरीचिमिश्रैः ।
इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराण-
मिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (इन्द्र); वाजिमेधेन—अश्वमेध यज्ञ से; यथा—जिस प्रकार; उदितेन—वर्णित; विततमानेन—सम्पन्न होकर; मरीचि-मिश्रैः—मरीचि आदि पुरोहितों द्वारा; इष्ट्वा—पूजा करके; अधियज्ञम्—परम परमात्मा को; पुरुषम् पुराणम्—आदि भगवान्; इन्द्रः—राजा इन्द्र; महान्—पूज्य; आस—हो गया; विधूत-पापः—समस्त पापों के धुल जाने से।

मरिचि तथा अन्य महर्षियों ने राजा इन्द्र पर कृपा की और विधिपूर्वक आदि पुरुष, परमात्मा, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा कर के यज्ञ सम्पन्न किया। इस प्रकार इन्द्र ने अपनी उन्नत स्थिति पुनः प्राप्त कर ली तथा वह प्रत्येक के द्वारा फिर से सम्मानित हुआ।

इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां
प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ।
भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं
महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥ २२ ॥
पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः

श्रृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।
धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं
रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; महा-आख्यानम्—महान् ऐतिहासिक घटना; अशेष-पाप्मनाम्—अनन्त पापों की; प्रक्षालनम्—स्वच्छ करने के लिए; तीर्थपद-अनुकीर्तनम्—तीर्थपद कहे जाने वाले श्रीभगवान् का यशोगान करते हुए; भक्ति—भक्तियोग का; उच्छ्रयम्—बढ़ते हुए; भक्त-जन—भक्तगण; अनुवर्णनम्—वर्णन करते हुए; महा-इन्द्र-मोक्षम्—स्वर्ग के राजा की मुक्ति; विजयम्—विजय; मरुत्वतः—राजा इन्द्र की; पठेयुः—पढ़ना चाहिए; आख्यानम्—कथा; इदम्—यह; सदा—सदैव; बुधाः—विद्वान पुरुष; श्रृण्वन्ति—सुनते रहते हैं; अथो—भी; पर्वणि पर्वणि—बड़े उत्सवों के अवसर पर; इन्द्रियम्—इन्द्रियों को तीक्ष्ण करने वाला; धन्यम्—धन लाता है; यशस्यम्—यश लाता है; निखिल—सभी; अघ-मोचनम्—पापों से मुक्त करते हुए; रिपुम्-जयम्—शत्रुओं के ऊपर विजयी बनाता है; स्वस्ति-अयनम्—सबों के लिए कल्याणकारी है; तथा—उसी प्रकार; आयुषम्—आयु।

इस महान् आख्यान में भगवान् नारायण की महिमा का वर्णन हुआ है, भक्तियोग की महानता के सम्बन्ध में कथन दिए गए हैं, इन्द्र तथा वृत्रासुर जैसे भक्तों के वर्णन आए हैं तथा पापी जीवन से इन्द्र के मोक्ष एवं असुरों के साथ लड़े गये युद्धों में उसकी विजय के सम्बन्ध में विवरण दिए गये हैं। इस आख्यान को समझ लेने पर सभी पाप-फलों से छुटकारा मिल जाता है। अतः विद्वानों को सदा सलाह दी जाती है कि इस आख्यान को पढ़ें। जो ऐसा करेगा उसकी इन्द्रियाँ अपने कार्य में निपुण होंगी, उसका ऐश्वर्य बढ़ेगा और यश चारों ओर फैलेगा। उसके समस्त पाप-फल मिट जायेंगे, उसे अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त होगी और उसकी आयु बढ़ेगी। चूँकि यह आख्यान सभी तरह से कल्याणकारी है, अतः विद्वान व्यक्ति इसको प्रत्येक शुभ उत्सव के अवसर पर नियमित रूप से सुनते और दोहराते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कंन्ध के अन्तर्गत ''ब्रह्महत्या के पापफल से पीड़ित राजा इन्द्र'' नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।